ISSN: 2456–5474 RNI No.UPBIL/2016/68367 Vol.-6* Issue-7* August- 2021
Innovation The Research Concept

भारतीय संस्कृतिःजैन धर्म का योगदान

Indian Culture: Contribution of Jainism

Paper Submission: 14/08/2021, Date of Acceptance: 23/08/2021, Date of Publication: 24/08//2021

सीमा श्रीवास्तव
असिस्टेंट प्रोफेसर
इतिहास विभाग
भवानी प्रसाद पाण्डेय पी. जी. कॉलेज, गोरखपुर,
उत्तर प्रदेश, भारत

Abstract

प्रस्तुत शोध पत्र में प्राचीन भारत के प्रचलित धर्मो में से जैन धर्म की विशेषताओं और भारतीय संस्कृति में दिए गए योगदान का उल्लेख किया गया है। विशेषतः विशुद्ध मानवतावाद पर अवलम्बित भारतीय संस्कृति की इस धर्म की प्राचीनता, निरंतरता और सर्वांगीणता जैसे विशेषताओं का विवेचन किया गया है। जैन धर्म द्वारा भारतीय संस्कृति को धार्मिक, साहित्यिक, कला आदि के क्षेत्र में दिए जाने वाले योगदान का वर्णन किया गया है। इस धर्म ने सम्प्रदायवाद, जातिवाद, भाषावाद, आदि सभी मतभेदो को त्याग कर राष्ट्रहित की कामना को सर्वोपरि स्थान दिया। इसके नियमों में कट्टरता होने के बाद भी इसमें समानता, सद्भावना, सदाचार का पक्ष मजबूत बना रहा।अपनी इन्हीं विशेषताओ से युक्त होने के कारण यह मात्र भारत मे ही नहीं विश्व मे अपनी पहचान स्थापित किये हुए है। इस शोध मे जैन धर्म द्वारा समाज मे समानता, मानवतावादी विचारधारा की भावना के स्थापना को विवेचित किया गया है।

In the present research paper, the characteristics of Jainism among the prevalent religions of ancient India and the contribution made in Indian culture have been mentioned. The characteristics of this religion, especially the antiquity, continuity and all-roundness of Indian culture based on pure humanism, have been discussed.The contribution made by Jainism to Indian culture in the field of religious, literary, art etc. has been described. This religion abandoned all differences of communalism, casteism, linguism, etc. and gave topmost place to the desire of the nation.Even after being bigoted in its rules, the side of equality, goodwill, virtue remained strong in it. Due to being equipped with these characteristics, it has established its identity not only in India but in the world. In this research, Jainism has discussed the establishment of the spirit of equality, humanistic ideology in the society.

मुख्य शब्दः ऋजुता, प्रशान्तवृति, सर्वदेशी, प्रस्थापित,अर्हत, वीतरागता, निर्जरा, प्रतिपक्षी, सुश्रुषा, परिग्रहमूलक, प्रमाद, कषाय, श्रुत, अकिंचन्य, पृच्छता, अनुप्रेक्षा, आम्नाय, सर्वोदयता, पर्यायार्थक, कायोत्सर्ग, सर्वभक्षी,वातरशनाआदि।

Straightforwardness, Pacifism, Omnipotent, Established, Deserving, Disillusioned, Ungrateful, Antagonistic, Susrusha, Parigraha Mulak, Pramad, Kashay, Shruta, Akinchanya, Prachchata, Anupreksha, Amnaya, Sarvodaya, Synonym, Kayotsarga, Omnivorous, Vatarashana etc.

प्रस्तावना

भारतीय संस्कृति के अनेक अध्येताओं ने इस मत का प्रतिपादन किया है किजैन धर्म और संस्कृति प्राक्वैदिक है। जैन संस्कृति मे देशकाल की परिस्थितियों के अनेक तत्वों का संस्कार तथा बहिष्कार करते हुए अपने तात्विक तथा अध्यात्मिक रूप मे अपने समकालीन तथा परवर्ती संस्कृतियों को भी प्रभावित किया। वस्तुतः विशुद्ध मानवतावाद पर अवलम्बित भारतीय संस्कृति का कदाचित् यह प्राचीनतम् धर्म है जिसने अहिंसा और अपरिग्रह का अद्वितीय एवं अनुपम सन्देश समस्त मानव जगत को प्रदान किया। समतावाद, अनेकान्तवाद या सर्वोदय, कर्मवाद, आत्मस्वान्त्रय आदि मानवीय सिद्धांतों को स्थापित कर जैनियों ने जातिवाद और वर्गभेद की अभेद्य दीवारों को खण्डितकरके सम्पूर्ण मानव समाज में एक नवीन चेतना का संचार किया है। वस्तुतः भारतीय संस्कृति के कला आदि समस्त क्षेत्रों मे अतुलनीय, अवर्णनीय

योगदान जैन धर्म ने दिया, भारतीय संस्कृति को जैन धर्म के अवदानों का निम्नवत बिन्दुओं में उल्लेख किया जा सकता है।

जैन धर्म द्वारा मानवोचित गुणों का विकास कर सामाजिकता को प्रस्थापित करने का कार्य किया गया। वस्तुतः धर्म आन्तरिक अनुभूति को सबल बनायें रखते हैं। बुद्धि, भावना और क्रिया को पवित्रता की ओर ले जाते हैं। वस्तुतः यह मात्र रूढ़ियों और रीति-रिवाजों का परिपालन मात्र नहीं है वह जीवन से जुड़ा सर्जनात्मक सर्वदेशीतत्व है जो प्राणिमात्र को वास्तविक शान्ति का सन्देश देता है, अविद्या और मिथ्याज्ञान को दूर कर सत्य और न्याय को प्रगट करता है, तर्कगत आस्था और श्रद्धा को सजीव रखता है, बौद्धिकता को जाग्रत कर सद्भावना के पुष्प खिलाता है और बिखेरता है उस स्वानुभूति को, जो अन्तर में ऋजुता, सरलता और प्रशान्त वृत्ति को जन्म देती है। यही जैन संस्कृति की अप्रतिम विशेषता है।

इंसान में निहित कुप्रवृत्तियाँ और भौतिकतावादी वासनायें हैं जो युद्ध और संघर्ष को जन्म देती हैं। व्यक्ति और राष्ट्र के मध्य कटुता की अभेद्य दीवालें खट्टी कर देती हैं। धर्म तो वस्तुतः दुःख के मूलकारण रूप आसक्ति को दूर कर असाम्प्रदायिकता को प्रस्थापित करता है, नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों को नयी दृष्टि देता है और समतामूलक समाज की रचना करने में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान देता है। कुन्दकुन्द, समन्तभद्र, हरिभद्र आदि जैनाचार्यों ने तो धर्म के उस रूप को प्रस्तुत किया जिसमें मानवता को प्रस्थापित कर धर्म को ईश्वर-विश्वास से पृथक कर दियागया था।

जैन धर्म अर्हत् धर्म है, उसकी संस्कृति वीतरागता से उद्भुत हुई जहां कर्मो को नष्ट कर, उनकी निर्जरा कर मोक्ष प्राप्त करना मुख्य उद्देश्य रहता है। इसलिए जैनाचार्यों ने अपनी संस्कृति के मूल में धर्म को संयोजित किया है और उसे जीवन के हर पक्ष से जोड़ने का प्रयत्न किया है। जैन सांस्कृतिक परम्परा में आत्म स्वातन्त्रय की घोषणा में व्यक्ति की स्वतंत्रता उद्घोषित है। वह स्वयं अपने कर्म का निर्माता और भोक्ता है। ईश्वर से मनुष्य को इतनी स्वतंत्रता देना जैन धर्म की अपनी विशेषता है।

जैन धर्म के चिन्तन का केन्द्रीयभूत तत्व आत्मा है। इस चिन्तन से वैराग्य का जागरण होता है, सचेतता आती है, रूपान्तरण होता है और समता का जन्म हो जाता है।

जैन संस्कृति की मूल अवधारणा है कि आत्मा में अनन्त शक्ति और ज्ञान प्रवाहित है। मूलतः वह विशुद्ध है, पर कर्मों के कारण उसकी विशुद्धता आवृत्त हो जाती है। वीतरागता प्राप्त करने पर वहीं संसारी आत्मा परमात्मा बन जाती है यह इस संस्कृति का लोकतंत्रात्मक स्वरुप है।जैन धर्म की वह स्वभावगत विशेषता है कि वहसमता मूलक हो।जैन संस्कृति की यह विशेषता हैकिवहअथ से इति तक समता की बात करती है।

धर्मः श्रुतचारितत्रात्म को जीवस्यात्मपरिणामः कर्मक्षयकारणम्[2]

समता व्यक्ति का वास्तविक धर्म है, स्वभाव है। धार्मिक व्यक्ति अपने आपको अकेला करता जाता है, स्वभाव की ओर मुड़ता जाता है। इसी प्रकार एक दिन निष्काम बन जाता है जो त्याग का जीवन होता हैं।

बर्बरता, पशुता, संकीर्णता उसकी प्रतिपक्षी स्वभाव है। राग-द्वेषादि भाव उसके विकार-तन्तु हैं, ऋजुता, निष्कपटता, विनम्रता और प्रशान्तवृत्ति उसकी परिणति है। सहिष्णुता, सच्चरित्रता उसका धर्म है वस्तुतः समता का सतह मानवता की सत्ता में निहित है। यह दोनों सत्तायें आत्मा की विशुद्ध अवस्था के गुण है। इन गुणों से समवेत व्यक्तित्व कोही साधु कहा जा सकता है4-

समयाए समणो होइ, बभचेरेण बंभणो,
नाणेण य गुणी होइ, तवेणं होइ तावसे ।।

ज्ञातव्य है कि समता समुद्र के समान गम्भीर, पृथ्वी के समान क्षमाशील और आकाश के समान स्वच्छ तथा व्यापक है इसलिए समता का सही रूप धर्म है। जैन संस्कृति सामाजिक समता का पक्षधर है इसमें कर्म को महत्वदियागयाहैऔर स्वयं केपुरुषार्थकोप्रस्थापितकियागया है। भगवान महावीर के कथन 'कडान कम्माण न मोक्ख अत्थि' से सिद्ध होता है कि किये गए कर्मों का फल भोगे बिना आत्मा का छुटकारा नहीं होता है। परिणामतः सभी श्रेष्ठ फल-प्राप्ति के अभिलाषीजन कर्म की श्रेष्ठता पर भी पूरा ध्यान देते है। अग्नि को स्पर्श करने पर हाथ का जलना सर्वथा निश्चित एवं अटल होता है। उसी प्रकार कर्ता को कर्म का फल भोगना ही पड़ता है डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी के मन्तव्यानुसार 'कर्मफल का सिद्धांत' भारत वर्ष की अपनी विशेषता है।

चरित्र की शुद्धता एवं सम्यक परिपालन किये बिना ज्ञान की आराधना हो ही नहीं सकती। इसीलिए चरित्र को धर्म कहा गया है और धर्म ही यथार्थ जीवन है। मानसिक चंचलता को संयम की लगान से वशीभूत करना सहयोग, सद्भाव, समन्वय उसके महास्तम्भ है। श्रमण का यही सही रूप, स्वरुप है। आचार्य कुन्दकुन्द ने कहा है कि समता आत्मा की सच्चा धर्म है, चारित्रं खलुः धम्मो धम्मो जो सो समोत्तिणिट्टट्ठों, अहिंसा उसी का एक अंग है।

चारित्रिक विशुद्धि की आधारशिला वस्तुतः परिवार है और परिवार का धर्म है गृहस्थ धर्म जिसे जैन संस्कृति में श्रावक या उपासक धर्म कहा गया जाता है चूँकि पारिवारिक, राष्ट्रीय शान्ति की स्थापना का उत्तरदायित्व श्रावक के सबल कन्धों पर होता है इसलिए श्रावक का जीवन सदाचारमय होना चाहिए। आचार्य हरीभद्र सूरी, जिनमण्डनगणि, पण्डित आशाधर आदि

चिन्तकों ने श्रावक के गुणों की सूची दी है जिसके अंतर्गत करुणा, सत्कार, सत्संग, कृतज्ञता सुश्रुषा, परोपकार आदि गुण सम्मिलित हैं। इनमें भी न्यायपूर्वक धन कमाना, शाकाहारी वृत्ति रखना और करुणाशील होना श्रावक की पहचान कही जा सकती है।[5]

न्यायोपात्त धनो यजत्गुणगुरून् सद्गीस्त्रिवर्गभजन्
नन्योन्यानुगुणं तदर्हगृहिणो-स्थानालयो ह्रीमयः।
युक्ताहारविहार आर्य-समितिः प्राज्ञः कृतज्ञो वशी
श्रृण्वन् धर्मविधि र्दयालु धर्मीःसागारधर्मचरेत् ।।

जैन संस्कृति अहिंसा और परिग्रह मूलक है, इसीलिए जैनाचार्यो ने व्यक्ति और समाज को परस्पर निष्ठ बताया है। वस्तुतः धर्म के इस गुणात्मक स्वरुप की अनेक परिभाषायें प्राप्त होती हैं यथा= 'धम्मो मंगलमुक्किट्ठ अहिंसा संजमो तवोः,[6]

मूलतः धर्म और अहिंसा में शब्दभेद है, गुण भेद नहीं। हिंसा का मूल कारण है प्रमाद और कषाय।[7] इसके वशीभूत होकर ही जीव के मन, वचन, कार्य में क्रोधादिक भाव प्रगट होते हैं जिनसे स्वयं के शब्द प्रयोग रूप भाव प्राणों का हनन होता है इसलिए भिक्षुओं को कैसे चलना-फिरना, उठना-बैठना, खाना-पीना चाहिए इसका विधान मूलाचार दशवैकालिक आदि ग्रंथों में उपलब्ध है अर्थात समस्त प्राणियों के प्रति संयम भाव ही अहिंसा है-

अहिंसा निउणंदिट्ठासब्बभूयेसु संजमो[8]

जिस प्रकार घिसना, छेदना, तपाना, रगड़ना इन चार उपायों से स्वर्ण की परीक्षा की जाती है उसी प्रकार श्रुत, शील, तप, दया, रूप गुणों के द्वारा धर्म एवं व्यक्ति की परीक्षा ली जाती है[18]

संजमुसीलुसउज्जुतवुसूरिहिगुरुसोइ।
दाहक-छेदक-संघायकसुउत्तमकंचणुहोई।।
(भावपाहु 143)
(दशवैकालिक 1/1)

अतः जीवन का सर्वांगीण विकास करना संयम का परम उद्देश्य रहता है। पानी छान कर पीना, रात्रि भोजन निषेध, अष्टमूलगुणोंकापरिपालन, निर्व्यसनी जीवन, समन्वयात्मक दृष्टिइत्यादि ऐसेनियमोंका विधान इसीलिए किया गया है कि साधक, अहिंसक और संयमीं बनकर अहिंसक समाज की रचना कर सकें।

जैन संस्कृति मूलतः अपरिग्रहवादी संस्कृति है। जिन निर्ग्रन्थ, वीतराग जैसे शब्द अपरिग्रह के ही द्योतक हैं। परिग्रही वृत्ति से व्यक्ति तभी विमुख हो सकता है जब वह अपरिग्रह या परिग्रह परीमाणव्रत का पालन करे। सत्य, संयम, तप, त्याग, आकिंचन्य, ब्रह्मचर्य आदि धर्म आध्यात्मिक साधना को जाग्रत करते रहते हैं और विचारों की पवित्रता को बनाये रखते हैं। इससे मानव संकल्प शक्ति का विकास भी होता है।

जैन संस्कृति भावप्रधान संस्कृति है इसलिए वहाँऊंच-नीच, स्त्री-पुरुष सभी के लिए समान स्थान रहा है। वैदिक संस्कृति में प्रस्थापित जातिवाद की कठोर श्रृंखला को काटकर महावीर ने जन्म के स्थान पर कर्म का आधार दिया, इनके अनुसार जिस व्यक्ति का चरित्र या कर्तव्य ऊँचा हो, विशुद्ध हो वही उच्च कुल में उत्पन्न माना जायेगा इसीलिए महावीर ने समानता के आधार पर चारों जातियों की नयी व्यवस्था की और उन्हें एक मनुष्य जाति के रूप मे प्रस्तुत किया-

'मनुष्यजातिरेकैव'।
कम्मुणा बम्भणों होई, कम्मुणा कोई खत्तियो,
परस्सकम्मुणोहोई, सुद्दो होई कम्मुणो ।।[10]

इसी सामाजिक समता के आधार पर महावीर ने सभी जातियों और सम्प्रदायों के लोगों को अपने धर्म में दीक्षित किया और उन्हें विशुद्ध आचरण देकर वीतरागता के पद पर बैठा दिया। इसी प्रकार नारी को भी दासता से मुक्त कर उसे सामाजिक समता का दर्शन ही नहीं कराया अपितु निर्वाण प्राप्ति का भी उसको अधिकारी घोषित किया। दास मुक्ति, नारी मुक्ति, जातिभेद मुक्ति के क्षेत्र में जैनियों का अविस्मरणीय योगदान है।

जैन संस्कृति में स्वाध्याय को सर्वोत्तम तप माना जाता है। कुन्दकुन्द के ग्रन्थों में उल्लिखित परिभाषाओं का सुन्दर सूत्रीकरण आचार्य कार्तिकेय ने किया है। जिसमे स्वाध्यान का रूप प्रतिबिम्बित हुआ है।

धम्मो वत्थुसहावो खमादिभावो य दसविहो धम्मो,
रमणत्तयं च धम्मो जीवाणं रक्खणं धम्मो ।।
(कार्तिकेयानुप्रेक्षा, 478)

उन सभी की आधारशिला है-'अपने लिए वही चाहो जो तुम दूसरे के लिए भी चाहते हो और जो तुम अपने लिए नहीं चाहते वह दूसरो के लिए भी मत चाहो। यही जिन शासन है।' स्वाध्याय के माध्यम से ही यह प्राप्तव्य है।

जं इच्छसि अप्पणत्तो, जं च नं इच्छति अप्पणंतो ।
तं इच्छ परस वि या, एत्तियगं जिणसासणं ।।

मानवीय एकता, सह-अस्तित्व, समानता और सर्वोदयता (अनेकान्तवाद) धर्म के तात्विक अंग हैं। अनेकान्तवाद और सर्वोदय दर्शन समस्त विषमताओं से आपदामग्न समाज को एक नयी दिशा दान देता है।

चिन्तन और भाषा के क्षेत्र में 'न या सियावाय वियागरेज्जा' का उपदेश समाज और व्यक्ति के अर्न्तद्वन्दों को समाप्त कर देता है, सभी को पूर्ण न्याय देकर सरल, स्पष्ट और निर्विवाद अभिव्यक्ति का मार्ग प्रशस्त कर देता है।

कलात्मक अवदान के क्षेत्र में जैनियों को विस्मृत नहीं किया जा सकता। जैन संस्कृति में कला का मूल उद्देश्य अध्यात्म की अभिव्यक्ति है और समस्त अभिव्यक्तियाँ उसी के इर्द-गिर्द घूमती रहती हैं। जैन साधकों ने मूर्तिकला, वास्तुकला, अभिलेख, पाण्डुलिपि, चित्रशैली आदि सभी क्षेत्रों को परिष्कृत किया है।

हड़प्पा, मोहनजोदड़ो, लोहानीपुर से प्राप्त मस्तक विहीन नग्न कायोत्सर्गी मूर्तियों को जैनों का महत्त्वपूर्ण मूर्तिकला अवदान कहा जा सकता है। जिस पर नन्दकालीन कलिंग जिन मूर्ति (खाखेल हाथी गुम्फा अभि. में उल्लिखित) मथुरा के कंकाली टीले में छिपी जैन कला सम्पदा, श्रवण बेलगोला की बाहुबली प्रतिमा इत्यादि की प्राप्ति ने मुहर लगा दी है।

बराबर, नागार्जुनी पहाड़, उदयगिरी-खण्डगिरी, रानीगुफा, गिरनार गुफायें, सोनभण्डार तथा दक्षिणापथ की मदुरै, रामनाथपुरम्, सितन्नवासल आदि में प्राप्त जैन गुफायें उल्लेखनीय हैं। आयागपट्ट, स्तूप, मन्दिर के निर्माण ने वास्तुकला की समृद्धि में वृद्धि कर दी। नागर, वेसर, द्रविड़ शैलियों के साथ ही प्रादेशिक शैलियों का भी प्रयोग जैन साधकों ने किया है। जैनाचार्यों ने जैन धर्म के प्रचार में भावाभिव्यक्ति के माध्यम से चित्रकला का समुचित उपयोग किया है। चित्रकला के सुन्दर उदाहरण नायाधम्मकहाओ, वरांगचरित, आदिपुराण, हरिवंशपुराण आदि ग्रन्थों में मिलता है। भित्तिचित्र, काष्ठचित्र, पटचित्र रंगावलि अथवा धूलि चित्र को चित्रकला के प्रमुख भेद बताये गए हैं।

प्राचीनतम भित्तिचित्र शित्तनावासल के जैन गुफा मन्दिर में मिलते हैं। वहाँ जलाशय का एक सुन्दर चित्र बनाया गया है। कर्गल (कागज) चित्र लगभग 14वीं शती के बाद अधिक मिलते हैं। काष्ठचित्र पाण्डुलिपियों पर लगे काष्ठ फलकों पर बनाये जातेथे। इन पर विद्या देवियों, तीर्थकरों, पशुपक्षियों तथा मानवा कृतियों का अंकन किया जाता था। इसी प्रकार पटचित्र और धूलिचित्र के भी उल्लेख साहित्य में मिलते हैं। चित्रकला के इन विविध रूपों में जैन साधकों ने अपनी धार्मिक भावनाओं की सफल अभिव्यक्ति की है। उसके माध्यम से अन्तर्वृत्तियों का उद्घाटन मनोदशाओं का अभिव्यंजन तथा रूप-भावना और आकृति-सौन्दर्य का चित्रण बड़ी सफलतापूर्वक हुआ है।[11]

व्यक्ति और समाज को जोड़ने के लिए मातृभाषा अथवा जनभाषा का प्रयोग[12] एक आवश्यक तत्त्व है। यह सभी को एकता के सूत्र में बाँधने का कार्य करने के साथ ही अभिव्यक्तिकी सशक्त माध्यम है। तीर्थकर महावीर ने उस समय बोले जाने वाली प्राकृत को अपनी अभिव्यक्ति का साधन बनाया और अपने दर्शन को जनता के समक्ष रखा। यह एक क्रान्तिकारी कदम था यही कारण है की जैन साहित्य प्राकृत में अधिकांशतः प्राप्त होता है। इस माध्यम में आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक क्षेत्र से भ्रष्टाचार दूर कर सर्वोदयवादी और अहिंसावादी विचारधारा को प्रचारित करने का अथक प्रयत्न किया। सामाजिक विषमता की सर्वभक्षी अग्नि को समता के शीतल जल और मन्द बयार से शान्त किया। जीवन के प्रत्येक अंग में अहिंसा और जीवनधाती व्यंजनों से मुक्ति, के महत्व को प्रदर्शित कर मानवता के संरक्षण में जैन संस्कृति ने सर्वाधिक योगदान दिया है।

जैन संस्कृति में एकात्मकता और राष्ट्रीयता को उतना ही महत्व दिया गया है जितना चरित्र को। धर्म और संस्कृति परस्पर गुथे हुए अविछिन्न अंग है। हमारी भारतीय संस्कृति में उतार-चढ़ाव और उत्थान-पतन आये परन्तु सांस्कृतिक एकता कभी विच्छिन्न नहीं हो सकी। इतिहास के उदय काल से आज तक एकात्मकता वैशिष्ट्य की जैन संस्कृति सहेजे हुयेहै। कहा जा सकता है की हमारे राष्ट्र का अस्तित्व एकात्मकता की श्रृंखला से स्नेहिलतापूर्वक भली-भांति जुड़ा हुआ है जिसमें जैन संस्कृति का अनूठा योगदान है। विविधता में पली एकता सौजन्य, सौहार्द को जन्म देती हुई 'परस्परोपग्रहोंजीवानाम्' को हृदयहारी पाठ पढ़ाती है और सज्जनता को प्रतिफलित करती है। जैन धर्म प्रारंभ से ही वस्तुतः एकात्मकता का पक्षधर रहा है। उसका अनेकात्मकता का सिद्धान्त अहिंसा की पृष्ठभूमि में एकात्मकता को ही पुष्ट करता रहा है। यह एक ऐतिहासिक तथ्य है। हिंसा के विरोध में अभिव्यक्त अपने ओजस्वी और प्रभावक विचारों से जैनाचार्यों ने एक ओर जहाँ दूसरों के दुखों को दूर करने का प्रयास किया वहीं मानव-मानव के बीच पनप रहे अन्तर्द्वन्द्वों को समाप्त करने का भी मार्ग प्रशस्त किया। इतिहास में कोई ऐसा उदाहरण नहीं जिसमें जैन धर्मावलम्बियों ने किसी पर आक्रमण किया हो और एकात्मकता को धक्का लगाया हो। भारतीय संस्कृति में उसका यह अन्य योगदान है जिसको किसी भी कीमत पर विस्मृत नहीं किया जा सकता। उनकी अहिंसक धार्मिक जीवन पद्धति और दार्शनिक, आध्यात्मिक तथा सामाजिक चिन्तन का परिणाम था कि सदैव उसने जोड़ने का काम किया तोड़ने का नहीं।

अध्ययन का उद्देश्य

शोध पत्र का मूल उद्देश्य जैन धर्मं द्वारा भारतीय संस्कृति को जो अमूल्य योगदान प्रदान किया गया उनका व्याख्यात्मक, विश्लैषणात्मक, विवरण प्रस्तुत करना है। यह धर्म अपनीविचार और जीवन संबंधी व्यवस्थाओं के विकास में कभी किसी संकुचित दृष्टि का शिकार नहीं हुआ इसका मुख्य कारण इनका उदार और उदात्त भूमिका रही है।इस शोध पत्र के माध्यम सेभारतीय संस्कृति की व्यापकता का अवलोकन करना तथा जैन धर्म की महत्त्वपूर्ण विशेषताओं को विभिन्न बिन्दुओं द्वाराज्ञानार्जनकराना, जैन धर्म की प्राचीनता, निरंतरता, विश्वबंधुत्व की भावना, मानवता, आध्यात्मिकता आदि के माध्यम सेजैन धर्म की विशेषताओं का व्याख्या भी इस शोध पत्रलेखनकामुख्य उद्देश्य है, जिससे पाठकों और विद्यार्थियों को लाभप्रद ज्ञानार्जन प्राप्त हो सके।

निष्कर्ष

भारतीय सांस्कृतिक क्षेत्र में प्रमुख रूप से श्रमण और

ब्राह्मण परम्परायें पल्लवित होती रही हैं। दोनों परम्परायें पृथक-पृथक होते हुए भी परस्पर में परिपूरक हैं। प्राचीनतम वैदिक साहित्य में समागत वातरशना, श्रमण, व्रात्य, अर्हित ऋषभ, केशी, पुण्यशील, यति, मुनि आदि शब्द जैन संस्कृति के प्रभावशाली अस्तित्व की सूचना देते हैं और मोहनजोदड़ो, हड़प्पा, लोहानीपुर में प्राप्त योगी ऋषभदेव की कार्योत्सर्ग मूर्तियाँ उसकी सांस्कृतिक विरासत की कथा कहती हैं। वस्तुतः श्रमणधारा का मूल प्रवर्तन जैन संस्कृति से हुआ है । बौद्ध संस्कृति तो 6वीं शताब्दी ई०पू० की देन है। सहस्रातिसहस्र प्राचीन इस जैन संस्कृति ने भारतीय संस्कृति को दार्शनिक सांस्कृतिक और साहित्यिक क्षेत्रों में अत्यंत समृद्ध किया है।14वस्तुतः इसने जिस तीर्थवादी प्रवृत्ति को विकसित किया वहां पूजा नहीं ध्यान है, वासना नहीं वीतराग अवस्था है अतः वह 'जिन' मार्ग है ऐसे जिनों का जिन्होंने कर्मवासना को जीत कर स्वानुमति के आधार पर उपदेश दिया है। स्वयं विशुद्धि के चरम शिखर पर पहुँच कर सभी प्राणियों के कल्याण की बात कही है। स्पष्टतः जैन धर्म और दर्शन का भारतीय संस्कृति पर व्यापक प्रभाव परिलक्षित होता है।

वस्तुतः भारतीय संस्कृति में मात्र जैन धर्म ही सर्वाधिक कठोर और उग्र सीमाओं कोस्वीकारकरनेवाला धर्मरहाहै।स्पष्टहै की जैन धर्म ने अपनीअलग पहचान बनाई जिसे विस्मृत नहीं किया जा सकता।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *उत्तराध्ययन 20/37-38*
2. *सूत्रकृतांग शी०वृ० 2/5/14*
3. *धर्मसंग्रणी-मलयगिरि, वृ० 25*
4. *उत्तराध्ययन 25/32*
5. *सागारधर्मामृत 1/11रु, धर्मबिन्दु 3/5*
6. *दशवैकालिकसूत्र 1/1, सर्वार्थसिद्धि 6/13*
7. *प्रमत्तयोगात्प्राणव्य परोपणंहिंसा, तत्वार्थसूत्र 7/13*
8. *दशवैकालिकसूत्र 6/9*
9. *भावपाहुण 143, दशवैकालिक 1/1*
10. *उत्तराध्ययन 25/9-27*
11. *प्रो०भागचन्द्रजैनभाष्कर, जैनदर्शनऔरसंस्कृतिकाइतिहास, नागपुरविश्व 1977 पृ० 12-15*
12. *प्रो०भागचन्द्रजैनभाष्कर, भारतीय संस्कृतिमेंजैन धर्मकाअवदान, पार्श्वनाथविद्यापिठ, वाराणसीपृ० 33-34*
13. *डॉ०नरेन्द्रभानावत, कर्मसिद्धान्त, सम्यवज्ञानप्रचारकमण्डल, जयपुरराजस्थानपृ० 25*
14. *मोहनलालमहतो, जैन धर्मदर्शन, पार्श्वनाथशोध संस्थान, वाराणसी।*